मौन

- श्री श्री रवीशंकर

वैशाख माह की पूर्णिमा को बुद्ध को जब बोध प्राप्त हुआ, तो ऐसा कहा जाता है कि वे एक सप्ताह तक मौन रहे। उन्होनें एक भी शब्द नहीं बोला। पौराणिक कथायें कहती हैं कि स्वर्ग के सभी देवता चिंता में पड़ गये। वे जानते थे कि करोड़ों वर्षों में कोई विरला ही बुद्ध के समान ज्ञान प्राप्त कर पाता है। और वे अब चुप हैं!

देवताओं नें उनसे बोलने की विनती की। महात्मा बुद्ध ने कहा, "जो जानते हैं, वे मेरे कहने के बिना भी जानते हैं और जो नहीं जानते है, वे मेरे कहने पर भी नहीं जानेंगे। एक अंधे आदमी को प्रकाश का वर्णन करना बेकार है। जिन्होनें जीवन का अमृत ही नहीं चखा है उनसे बात करना व्यर्थ है, इसलिए मैनें मौन धारण किया है। जो बहुत ही आत्मीय और व्यक्तिगत हो उसे कैसे व्यक्त किया जा सकता है? शब्द उसे व्यक्त नहीं कर सकते। शास्त्रों में कहा गया है कि, "जहाँ शब्दों का अंत होता है वहाँ सत्य की शुरुआत होती है"।

देवताओं ने उनसे कहा, "जो आप कह रहे हैं वह सत्य है परन्तु उनके बारे में सोचें जो सीमारेखा पर हैं, जिनको पूरी तरह से बोध भी नहीं हुआ है और पूरी तरह से अज्ञानी भी नहीं हैं। उनके लिए आपके थोड़े से शब्द भी प्रेरणादायक होंगे, उनके लाभार्थ आप कुछ बोलें और आपके द्वारा बोला गया हर एक शब्द मौन का सृजन करेगा"।

शब्दों का उद्देश्य मौन बनाना है। यदि शब्दों के द्वारा और शोर होने लगे तो समझना चाहिए, वे अपने उद्देश्य को पूरा नहीं कर पा रहे हैं। बुद्ध के शब्द निश्चित ही मौन का सृजन करेंगे, क्योंकि बुद्ध मौन की प्रतिमूर्ति हैं। मौन जीवन का स्त्रोत है और रोगों का उपचार है। जब लोग क्रोधित होते हैं तो वे मौन धारण करते है। पहले वे चिल्लाते हैं और फिर मौन उदय होता है। जब कोई दुखी होता है, तब वह अकेला रहना चाहता है और मौन की शरण में चला जाता है। उसी तरह जब कोई शर्मिंदा होता है तो भी वह मौन का आश्रय लेता है। जब कोई ज्ञानी होता है, तो वहाँ पर भी मौन होता है।

अपने मन के शोर को देखें। वह किसके लिए है? धन? यश? पहचान? तृप्ति? सम्बन्धों के लिये? शोर किसी चीज़ के लिए होता है; और मौन किसी भी चीज़ के लिए नहीं होता है। मौन मूल है; और शोर सतह है। ■

आँखों का रिश्ता

- सरिता कुमारी

उड़ती-उड़ती उसकी नज़रें उन आँखों से टकराईं और वहीं ठिठक गईं। उसकी प्रतीक्षारत, बेचैन निगाहें यहाँ-वहाँ उड़ना-फिरना छोड़कर बस उन काली-कत्थई-ग्रे सी आँखों में उलझी तो उलझी ही रह गईं। पाखी को होश नहीं और न जाने वह कब तक सम्मोहित सी उन आँखों में उलझी रह जाती अगर उन आँखों की स्वामिनी स्वयं ही उसके पास आकर उस सम्मोहन की जकड़न से उसे छुड़ा न लेतीं।

"क्या आप मुझे जानती हैं?"

उन आँखों...नहीं नहीं...उनकी स्वामिनी ने पाखी से शब्दों से ही नहीं आँखों में छलकते, हिलोरें लेते सवालों के साथ चाशनी में डूबे गुलाबजामुन से ये मीठे-मीठे शब्द बड़े अपनेपन से उस पर उड़ेल दिए। पाखी झेंप गई। उन आँखों की जानी-पहचानी मीठी सी कशिश ने कुछ पलों के लिए उसे सब कुछ भुला दिया था। वह कौन है, यहाँ इस भीड़ भरे रेस्टोरेंट में क्यों है और क्या कर रही? सब कुछ। पर खुद को सँभालते हुए, अपनी झेंप मिटाकर उसने उसी विनम्रता से उत्तर दिया,

"जी...जी नहीं! माफ कीजिएगा...मैं नहीं जानती आपको।"

"ओह! जिस तरह से आप मुझे इतनी देर से, इतने प्यार और अपनेपन से देख रहीं थीं, मुझे लगा आप मुझे जानती हैं... और शायद मैं ही आपको पहचान नहीं पा रही।" उस 23-24 वर्ष की इकहरे बदन की साँवली-सलोनी सी लड़की ने थोड़ा निराश होते हुए कहा। मानो उसे उम्मीद थी कि कोई भूली-बिसरी कड़ी आज अचानक हाथ लग जाएगी।

बात तो सच थी उनकी, वह इतने गौर से उन्हें एकटक क्यों देखे जा रही थी, क्या जवाब दे? कैसे बताए कि वह उनकी आँखों में सच ही किसी बिछड़े हुए का पता देख पा रही थी...कैसे कहे कि वह आँखें उसे अपनी बहुत अपनी लगी थीं। पर वह ऐसा कुछ न कह पाई। उसे कोई उपयुक्त जवाब नहीं सूझा तो वह बस चुप रह गई। उसके चेहरे को गौर से देखती वो आँखें और उनकी स्वामिनी थोड़ा असमंजस में आ गईं। पाखी भी क्या करे वह तो ऐसी ही है, बचपन से, बहुत अन्तर्मुखी। बहुत करीबी लोगों से भी कभी खुलकर कुछ नहीं कह पाती तो अजनबी लोगों से क्या कहे।

"मैं क्या थोड़ी देर आपके पास बैठ सकती हूँ? मेरा नाम कामना है।" उसने एक हाथ से उसके ठीक सामने की कुर्सी खींचते हुए और दूसरा हाथ मुसकराते हुए उसकी ओर बढ़ाते हुए पूछा। पाखी भी मुसकरा दी। उसने अपना परिचय देते हुए उसका बढ़ा हुआ हाथ थाम लिया,

"हाँ...बिलकुल...मैं पाखी हूँ!"

"ओह कितना प्यारा नाम है! पाखी... पा...खी...!" उसने प्रत्यक्ष ही उसका नाम गुनते हुए कहा।

"किसी का इंतजार कर रही हो? बस थोड़ी देर...न जाने क्यों तुमसे बड़ा मन कर रहा बात करने का। प्लीज अन्यथा मत लेना।"

"नहीं...नहीं अन्यथा लेने जैसी कोई बात नहीं...आप प्लीज बैठिए...मेरे कुछ सहपाठी आने वाले हैं। रमन का जन्मदिन है तो वह लंच दे रहा है हमें। मैं कुछ ज्यादा ही पहले आ गई। आप बैठिए मुझे अच्छा लगेगा।"

पाखी के मन में एक अद्भुत सुख की मंद बयार चलने लगी। इन चिर-परिचित आँखों का साथ वह भी इतने पास से। इस वक्त उसे इससे अधिक कुछ नहीं चाहिए था। पर अपनी सोच पर वह खुद ही झेंप गई।वह सुंदर-सलोना चेहरा उसे ही देखे जा रहा था।

"मैं भी अपने एक दोस्त का इंतजार कर रही लंच पर...पर लगता है वह थोड़ा लेट हो गया...जब तक मेरे दोस्त या तुम्हारे दोस्तों में से कोई आ नहीं जाता। हम थोड़ा गप-शप कर लेते हैं। अगर...तुम्हें कोई ऐतराज न हो।"

उसने अंतिम वाक्य थोड़ा झिझकते हुए जोड़ा।

"नहीं...नहीं! आप प्लीज ऐसा न कहें। मुझे खुद आपसे बात करके न जाने क्यों बहुत अच्छा लग रहा है। आप बैठिए आराम से!"

पाखी ने भरसक उन्हें आश्वस्त करते हुए कहा। उसे डर था कहीं ये बिछड़ी हुई सी आँखें फिर कहीं गुम न हो जाएँ।कामना खुश हो गई और मेज पर पाखी के ठीक सामने वाली कुर्सी पर निश्चिंत होकर बैठ गई। बैठते ही उसकी बातों का पिटारा खुल गया। दुनिया-जहान की बातें वह इतने अपनेपन से पाखी से करने लगी मानो वो कई जन्मों से एक-दूसरे से परिचित हों। पाखी की पढ़ाई-लिखाई, रुचियाँ, दोस्त, परिवार न जाने क्या-क्या। पाखी कभी चौंकती, कभी मुसकरा देती, कभी मुग्ध चुपचाप बस उन्हें सुनती, देखती रहती। सदैव की मितभाषी पाखी का योगदान हाँ...हूँ...या एकाध वाक्य से अधिक नहीं था। वह हैरान थी कैसे सिर्फ आँखें ही नहीं यहाँ तो स्वभाव में भी अद्भुत समरूपता थी। उसका मन इन आँखों से जुड़े सारे दर्द भूलकर एक मीठी पहचान भरी ऊष्मा से भर गया। आज कितने समय बाद जैसे उसे सुकून मिला, वही हाव-भाव और एकदम वही आँखें इन्द्रधनुषी रंगों से भरपूर। उसका मन चाह रहा था कामना बस यूँ ही बैठी रहे, बातें करती रही, उसकी दुखती रग-रग पर नरम मुलायम मलहम रखती रहे। इस पीड़ा से कहीं से भी, कैसे भी राहत तो मिले। पर यह चिरकाल तक सम्भव नहीं था।

"ओह अरविंद आ गए।" कामना ने अपनी रिज़र्व सीट की ओर देखते हुए कहा।

"पाखी तुम मुझे अपना फोन नम्बर दो न प्लीज। हम कांटैक्ट में रहेंगे। तुमसे बात करके बहुत अच्छा लगा...देखो मैं तुम्हें तुम ही कहूँगी, मुझसे तो तुम तीन साल छोटी निकली।" कामना ने जब पूरे अधिकार से कहा तो वह मुसकराए बिना रह न सकी।

"बिलकुल...आप तुम ही कहिए।"

फोन नम्बर के आदान-प्रदान के बाद वे अपने-अपने दोस्तों में मशगूल हो गईं, थोड़ी ही देर में पाखी के सारे दोस्त भी आ गए थे। बात आई-गई हो गई। पर कामना की वो आँखें पाखी का पीछा करती ही रहीं हर पल। उन आँखों में पाखी को अपनी खोई खुशियों के खजाने की चाभी पड़ी दिख रही थी। वह बेचैन थी उन आँखों की स्नेहिल ऊष्मा पाने के लिए। रेस्टोरेंट में अपना लंच करते हुए कामना की नजरें रह-रह कर पाखी की नजरों से मिलती रहीं थीं और जाते हुए उसने हाथ को कान पर लगाते हुए जल्द ही कॉल करने का इशारा किया था। अपने दोस्तों से घिरी हुई पाखी ने मुसकरा कर इशारे से हामी भर दी थी।

कॉलेज से आने के बाद अपनी व्यस्तताओं से निपट कर रात में सोने से पहले पाखी ने व्हाट्सएप्प ऑन किया और नम्बर स्क्रॉल करते हुए कामना के नम्बर पर वह अनायास ही ठिठक गई। उससे मिलने के बाद से लगातार कुछ तरल सा उसके मन की बंद दीवारों में चुपचाप बह रहा था। कभी गाढ़ा हो जाता तो कभी इतना पतला की बाहर बह जाने के लिए उफान मारने लगता। पाखी पूरी ताकत से इस उफान को दबाकर मन का ढक्कन कस कर बंद कर देती और उस तरल को गाढ़ा बनाने में जुट जाती। इतना गाढ़ा की पत्थर होकर यह हिल भी न सके। पिछले दो सालों में वह इस तरल को पत्थर बनाने में सफल तो नहीं हो पाई पर हाँ इतना गाढ़ा बनाना तो सीख ही गई है कि इसके वक्त-बेवक्त के उफान और बहाव पर काबू पा सके। पर आज कामना से मिलने के बाद पिछले दो साल में इतनी मेहनत से बनाए उसके धैर्य के दुर्ग में जैसे किसी ने बेदर्दी से कई सुराख कर दिए, जिससे लाख कोशिश के बाद भी रिस-रिस कर ये तरल उसकी अन्तरात्मा भिगोए दे रहा था। पाखी व्हाट्सएप्प पर कामना के नम्बर पर उसकी डिस्प्ले पिक्चर चुपचाप थोड़ी देर देखती रही। वही आँखें... आत्मविश्वास से भरपूर, अथाह स्नेह छलकातीं पर गहरी और तेज से भरी हुईं। वह धोखा नहीं खा सकती ये वही आँखें हैं जो होश सँभालते ही से उसके अन्दर-बाहर चारों ओर मँडराती रहती थीं। सोते-जागते, हँसते-रोते, हर बात में, हर समय और अचानक वो उसकी दुनिया से एक दिन हमेशा के लिए गायब हो गईं। कैसे वह बावली सी उन्हें हर जाने-अनजाने

चेहरे पर खोजती रहती, उसे पता था कि वो आँखें तो यहीं इसी दुनिया में किसी और चेहरे पर जड़ी कहीं न कहीं जल-बुझ रहीं हैं। पर वो उसे अब तक कहीं नहीं मिलीं थीं। पाखी ने धीरे से बिस्तर के सिराहने रखे रानू दीदी की फोटो उठाई और ध्यान से कामना की डिस्प्ले पिक्चर से तुलना करने लगी। वह थोड़ी हैरान थी और साथ ही थोड़ी आश्वस्त भी...हूबहू वही आँखें, ये तो निस्संदेह रानू दीदी ही हैं कामना की आँखों से झाँकती। उसे प्यार से सहलाती, समझाती, मनाती, धमकाती, डराती, खिजाती...कितना कुछ। नहीं... वह इन आँखों को पहचानने में धोखा नहीं खा सकती। कभी नहीं।

रानू दीदी, उसकी बड़ी बहन जो आयु में तो मात्र चार साल ही बड़ी थीं उससे पर अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व से उसकी गार्जियन से कम नहीं समझती थीं खुद को। कहने को तो दोनों सगी बहनें थीं पर स्वभाव में ज़मीन-आसमान का अंतर था उनमें। जहाँ रानू दीदी लबालब आत्मविश्वास से भरपूर, मेधावी, तेज-तर्रार, बहुमुखी प्रतिभा की धनी, अपनी अलहदा सोच और व्यवहार से दुनिया से अलग ही व्यक्तित्व की मालकिन और अपने विचारों से समय से बहुत आगे थीं। वहीं रानू बेहद शांत, सरल और सौम्य स्वभाव की थीं। उसकी दुनिया अपनी बड़ी बहन रानू के आगे पीछे ही घूमती थी। उसकी हर जरूरत, हर समस्या, हर परेशानी का सिर्फ और सिर्फ एक ही इलाज था, रानू दीदी।

रानू दीदी थीं भी उसके हर मर्ज की दवा। बचपन में उसके टूटे खिलौने को जोड़ने वाले ग्लू से लेकर बड़े होने पर किसी को देखकर धड़कते दिल की रहस्यमय पुकार का मर्म समझाने वाली तक। उनसे उसकी कोई बात छुपी नहीं थी। वही थीं जिनके सामने वह बोलती थी तो बस बोलती रहती थी। बाहर का कोई अगर रानू दीदी के सामने चलती उसकी पटर-पटर सुन ले तो शायद बेहोश ही हो जाए कि ये गूँगी गुड़िया बोलती भी है वह भी इतना अधिक। पर उसका यह रूप सिर्फ और सिर्फ उसकी रानू दीदी के लिए था। दुनिया में «टॉमबॉय» की इमेज वाली उसकी रानू दीदी उसके लिए टॉमबॉय न होकर उसकी मार्गदर्शक, उसकी संरक्षक, उसका आदर्श और उसकी परम मित्र...सब कुछ वह ही थीं। उनके सामने ही पाखी असली पाखी थी। उसे याद है बचपन में रानू दीदी की छोटी बहन होने के कारण कैसे रानू दीदी की छाया हर वक्त उसे अपने आगोश में लिए रहती थी। एक अदृश्य रानू दीदी की चादर उस पर तनी रहती थी। स्कूल में बिना परिचय ही सब उसे देखते ही समझ जाते थे कि वह रानू दीदी की छोटी बहन है।

"अरे हूबहू रानू जैसी है! ए तुम रानू की छोटी बहन हो न!"

वह हाँ में सिर हिलाती और झेंप कर भाग जाती। रानू दीदी की बहन होने के फायदे ही फायदे थे। कितनी बार उसे क्लास मॉनीटर इसलिए बना दिया गया कि टीचर को लगा कि रानू की छोटी बहन है तो वह भी रानू की तरह ही जिम्मेदार और हर बात में होशियार होगी। उसे अपनी पहचान बनाने के लिए कभी खुद खास जद्दोजहद नहीं करनी पड़ी। रानू का मिनी रूप उसे अपनी जगह दिला ही देता कई बार वह सच में जिस लायक होती उससे कहीं ज्यादा ही। हाँ कभी-कभी उसे रानू दीदी की छाया होने पर परेशानी भी होती जब उससे जरूरत से अधिक उम्मीदें की जातीं सिर्फ इसलिए कि वह रानू की छोटी बहन है तो वह सच में इस अनावश्यक दबाव से तनाव में आ जाती थी। उसका मूल स्वभाव रानू दीदी जैसा मुखर नहीं था और लोग अकसर यह भूल जाते थे। तब वह कई बार रानू दीदी से नाराज होकर शिकायत करती कि यह तो उसके साथ अन्याय है। तब वो समझातीं, उसकी मदद करतीं, यहाँ तक की ऐसी अन्याय पूर्ण उम्मीद रखने वालों और तुलना करने वालों से उसे बचाने का प्रयास करतीं, घर-बाहर, स्कूल, हर जगह।

वह जाने कैसे एक रक्षाकवच सी हर समय उसके आस-पास होतीं और वह उनके लिए काँच सी पारदर्शी होती जिसमें अन्दर-बाहर का सब कुछ उनके सामने बिखरा होता। पर कभी-कभी रानू दीदी का बचपन से संरक्षक बने रहने वाला रूप उसे अखर जाता। वह बड़ी हो रही थी पर रानू दीदी उसे हमेशा छोटी बच्ची ही समझतीं थीं। हर समय उसे सम्हालने, उसकी मदद करने को तैयार। उसका किशोर मन कई बार विद्रोह पर उतारू हो जाता। उसे याद है कैसे एक बार जब वह उन्हें स्कूटी पर पीछे बैठाकर कॉलेज ले जाने की जिद पर अड़ गई तो वह बेमन से मान तो गईं पर रास्ते भर उनकी भयभीत टोका-टाकी और घबराहट से तंग आकर रास्ते में ही उसने स्कूटी रोक दी थी और परेशान होकर उनसे कहा था,

"दीदी आपको क्या लगता है ड्राइविंग लाइसेंस के लिए टेस्ट मैंने ऐसे ही पास कर लिया? आप कब तक मुझे छोटी बच्ची ही समझती रहेंगी, सिर्फ चार साल ही तो छोटी हूँ आपसे। आप को लगता है मैं खुद से कुछ कर ही नहीं सकती।»

उसने झल्लाहट से भरी आवाज में कहा था। बेचारी रानू दीदी सिटपिटा कर रह गईं थीं। उनकी ऐसी ही बड़ी-बड़ी आँखों में बेचारगी का भाव तैर गया था।

"सॉरी छुटकी! सॉरी...! हाँ सच में मुझे पता नहीं क्यों इतनी घबराहट हो रही...तू कैसे स्कूटी चला लेगी...अब ठोंका की तब ठोंका... बस यही दिमाग में नाच रहा। चलो अच्छा अब मैं आँखें बंद करके बैठ जाती हूँ....कुछ दिखेगा नहीं तो डर भी नहीं लगेगा।» उन्होंने स्वीकार करते हुए, झिझकते हुए उसे मनाने की कोशिश की।

"नहीं, मुझे नहीं चलाना अब...इतने डर के साथ आप पीछे बैठी रहेंगी तो पक्का ही मैं कहीं न कहीं ठोक दूँगी आज। आप ही चलाइए।"

पाखी नहीं मानी तो नहीं मानी। उनका चेहरा कैसा उतर गया था। पाखी जानती थी उसके प्रति उनका अथाह सुरक्षा भाव ही न चाहते हुए भी उनसे ऐसा व्यवहार करा रहा था। बचपन से उसे खरोंच भी लग जाए तो कैसा बौखला जातीं थीं। एक बार छुटपन में पड़ोस के एक लड़के ने खेल-खेल में नाराज होकर पाखी को ढकेल दिया था, दीवार के कोने से उसके माथे पर चोट आ गई थी। रानू दीदी ने देखा तो ये कहते हुए कि «हिम्मत कैसे हुई उसकी मेरी बहन को हाथ लगाने की» और गुस्से में लाल हुई इन्हीं आँखों से क्रोध की चिनगारियाँ बरसातीं जाकर उस लड़के की मरम्मत कर आईं थीं। घर पर पापा ने रानू दीदी की कसकर क्लास लगाई थी तब। पर फिर वो लड़का पाखी को देखते ही घबराकर पल में नौ दो ग्यारह हो जाता था। इस घटना की याद आते ही पाखी मुसकरा दी।

उसकी ऐसी रानू दीदी एक दिन अचानक ही उसे छोड़कर हमेशा के लिए चली गईं। तब नहीं सोचा क्या उन्होंने कि उसकी पाखी का क्या होगा? यादों की गरमाहट में लिपटी, गहरी सोच में डूबी पाखी ने एक गहरी साँस छोड़ी। तभी मोबाइल पर कामना का व्हाट्सएप्प मैसेज चमक उठा,

"स्वीट ड्रीम्स, स्वीट गर्ल!

सो गई क्या? बहुत रात हो गई।

मैं अब फ्री हुई। फिर बात करूँगी तुमसे।

आज तो गुड नाइट स्वीटी।" पाखी उसके मैसेज को घूरती रही और सोचती रही कि ये क्या अजब रिश्ता जुड़ रहा इस अनजान लड़की से, सिर्फ एक आँखों के कारण...एक आँखों का रिश्ता।

"गुड नाइट कामना.....दीदी।"

पाखी ने बहुत सोचते और झिझकते हुए मैसेज में दीदी टाइप किया।और उधर से उस पर किसेज इमोटिकॉन की बौछार हो गई।

"तुम तो सच में किसी मेले में बिछड़ी मेरी बहन ही हो। दिल खुश कर दिया छुटकी, जियो मेरी डॉल।»

"छुटकी!"

पर ऐसे तो सिर्फ और सिर्फ रानू दीदी बुलातीं थीं उसे। और तब मन में तेजी से पिघलते, हिलोरें लेते तरल में उठे तूफान को पाखी नहीं रोक पाई और वह आँखों के रास्ते बह निकला। उसने मोबाइल स्विच ऑफ किया और थोड़ी देर तरल को ठोस बनाने की कोशिश छोड़ दी।

सुबह उठी तो मन में एक निश्चय के साथ। नाश्ते की टेबल पर वह चुपचाप पापा को थोड़ी देर देखती रही, उनका मिजाज भाँपने की कोशिश करती रही। खाने की टेबल पर अब कैसी जानलेवा चुप्पी छाई रहती है रानू दीदी के जाने के बाद। वह होती थीं तो खाने की टेबल पर भी ठहाके गूँजते रहते थे। पापा का कड़ा अनुशासन मेज़पोश के नीचे खिसका कर वह दुनिया जहान की बातों का पिटारा खोले रहतीं। बीच-बीच में पापा की झिड़कियाँ, "रानू नाश्ता करो चुपचाप। खाते समय नहीं बोलते इतना, कितनी बार समझाया है।" थोड़ी देर कहने को चुप्पी और फिर वही बातों का सिलसिला, जिनमें वह पापा को भी घसीट ही लेतीं। अब खाने की टेबल का भाँय-भाँय करता सन्नाटा मानो मुँह चिढ़ाता है सबका। कौन बोले? रानू दीदी के अलावा घर में कोई भी बातूनी स्वभाव का नहीं था। अब तो बीच-बीच में प्लेट और चम्मच की बातचीत की खनखन ही सुन जाती, वह तो चुप ही रहते। रानू दीदी की शह पर फुदकते रहने वाली पाखी अब मशीन की तरह खाकर चुपचाप

टेबल से उठ जाती। पर आज बहुत सोच-समझ कर पाखी ने धीरे से एक सवाल पापा की प्लेट पर खिसका दिया।

"पापा क्या ये सम्भव है कि दो बिलकुल अनजान लोगों की आँखें बिलकुल एक जैसी हों, यहाँ तक की कद-काठी, चेहरा-मोहरा भी बहुत मिलता-जुलता हो?»

पापा के हाथ जहाँ के तहाँ रुक गए। उन्होंने इस अप्रत्याशित सवाल पर चौंक कर पाखी को देखा फिर कुछ सोचकर बोले, "क्या पता? पर नहीं हो सकते यह भी यकीन से नहीं कहा जा सकता। होने को तो कुछ भी सम्भव है।पर तुम ये सवाल क्यों पूछ रही हो पाखी?"

पाखी ने झिझकते हुए कल रेस्टोरेंट में कामना से हुई मुलाकात का पूरा किस्सा सुना दिया। पापा चुपचाप सुनते रहे पर कुछ बोले नहीं। नाश्ता करके वह बिना कुछ बोले उसका सिर हौले से थपथपा कर उठ गए। उनसे सकारात्मक प्रतिक्रिया न पाकर पाखी उनसे आगे कुछ भी न पूछ सकी। उसका निश्चय मन में ही कुलबुलाता रह गया। उसने कातर नजरों से माँ को देखा तो वह बस मुसकरा कर इतना ही बोलीं,

"कभी कामना को घर बुलाओ, हम भी मिल लेंगे उससे। और आज कॉलेज के लिए देर नहीं हो रही क्या?»

पाखी को माँ से थोड़ा हौसला मिला तो वह पूछ ही बैठी,

"माँ क्या आपको नहीं लगता वो आँखें रानू दीदी की हैं?»

माँ ठिठक गईं फिर वो उसके कातर हो रहे चेहरे को मानो सांत्वना देती हुई सी बोलीं, "क्यों नहीं हो सकतीं पाखी...पर बेटे आपको पता है कि पापा क्या सोचते हैं इस बारे में..."

"पापा की छोड़िए आप क्या सोचतीं हैं मम्मा?"

"पाखी! बेटा मुझे भी पापा की बात बिलकुल ठीक लगती है... हम क्यों किसी के जीवन में हस्तक्षेप करें? बेटे ये तो तुम्हारी दीदी की इच्छा थी...इसलिए... नहीं तो...ये आँखें भी तो कब का मिट गई होतीं और तब तुम्हें ऐसे भटकाव नहीं होता... और वैसे भी ये कभी पता नहीं चलेगा और उसकी ज़रुरत भी नहीं है! उन बातों से तुम्हें रानू दीदी अब नहीं मिलेंगी बेटा...सब्र करो पाखी। हमारे पास कोई चारा नहीं है अब।"

माँ की दर्द में डूबी आवाज से पाखी को अफसोस होने लगा कि उसने ये बात क्यों छेड़ी।

"तुम्हें कामना अच्छी लगी, बिलकुल रानू जैसी दिखती है तो उसे बेशक हमसे भी मिलवाओ पर बेटा मृगमरीचिका के पीछे न भागो पाखी।" उसका उतरा चेहरा देखकर उन्होंने उसे समझाने की कोशिश की।पाखी ने मानो माँ को तसल्ली देने के लिए एक फीकी मुसकान बिखेर दी।

पाखी की अब रोज ही कामना से या तो फोन पर या व्हाट्सएप्प पर लम्बी-लम्बी बातचीत होती। पाखी हैरान थी कि वह कैसे इतने कम समय में कामना से आश्चर्यजनक रूप से खुल गई थी। वह उसे दीदी ही बुलाती थी। कामना उसी के कॉलेज में रिसर्च स्कॉलर थी। जब भी उन्हें समय मिलता वह अकसर कॉलेज में मिल भी लेतीं। कामना उसे «मेरी छुटकी" कहकर कसकर गले से लगा लेती और पाखी के अन्दर का तरल जोर-जोर हिलोरें लेने लगता। वह उसकी काली,कत्थई और स्लेटी रंग के अजब घालमेल वाली आँखों वही बिलकुल उसकी रानू दीदी जैसी आँखों में अपना खोया सुख फिर से जीने लगती। उन आँखों के सामने वह फिर से पारदर्शी होकर अपना अन्दर-बाहर सब बिखेर देती। जहाँ प्यार था, समझाइश थी और कभी-कभी झिड़कियाँ भी थीं।

ऐसे ही एक दिन पाखी ने बताया कि उसके माँ-पापा भी कामना से मिलना चाहते हैं। कामना सहर्ष तैयार हो गई, एक रविवार माँ ने लंच पर उस बुला लिया। कितने दिनों बाद खाने की टेबल पर वर्षों पहले की रौनक लौट आई थी। कामना के रंग-रूप, कद-काठी, हाव-भाव और स्वभाव में रानू से अद्भुत साम्यता थी। उसे देख पाखी के माँ-पापा भी थोड़े हैरान थे। उसका बातूनी स्वभाव, बात-बात पर उसकी खिलखिलाहट घर का कोना-कोना गमका रहा था। जाने कितने समय बाद घर की दीवारें खुलकर हँस रहीं थीं। पाखी ने माँ-पापा की आँखों में भी कामना के लिए वही पहचान देखी जो उसने खुद उससे पहली मुलाकात में महसूस की थी। किचन में दरवाजे के पीछे माँ को चुपके से अपनी भीगी आँखें पोंछते हुए भी उसने देख ही लिया।

खाने के बाद वे दोनों पाखी के कमरे में आकर गप्पें मारने लगीं। पाखी के बेड के बगल में रखी रानू की फ्रेम की हुई तसवीर पर नजर पड़ते ही वह चौंक गई। तसवीर उठाकर वह बड़ी देर तक गौर से उसे देखती रही। पाखी ने उसे रानू दीदी के बारे में खास कुछ नहीं बताया था इसलिए कामना को ठीक से कुछ पता नहीं था सिवाय इसके कि उसकी एक बड़ी बहन थी। वह असमंजस में थी। उसके चेहरे पर कई रंग एक साथ आ-जा रहे थे। उसे पाखी का अपने प्रति अद्भुत लगाव का कारण अब साफ-साफ समझ में आ रहा था। उस दिन रेस्टोरेंट में उसका अपलक उसे प्यार और कातरता से निहारना...रहस्य की परतें धीरे-धीरे उधड़ रहीं थीं। उसका खुद का पाखी के प्रति अजब झुकाव, उसे हर वक्त बार-बार देखने की इच्छा, इन आँखों के अबूझ परदों के पीछे बंद थीं। ये आँखें... ये चेहरा...

"ये मेरी रानू दीदी हैं कामना दीदी! कितनी सुन्दर है न...!» इस अजीब चुप्पी को तोड़ने की गरज से पाखी ने कामना का ध्यान भंग करना चाहा। "कितनी सुन्दर आँखें हैं न इनकी एक बार इनमें झाँक लो तो बस इन्हीं के हो जाओ...और आप कितना मिलतीं हैं उनसे...आप भी वैसी ही सुन्दर हैं...बिलकुल वैसी ही आँखें हैं आपकी भी...!" पाखी ने झिझकते हुए ये भी कह ही दिया।

"हाँ सचमुच...बहुत सुन्दर...बहुत ही सुन्दर!" कामना ने बुदबुदाते हुए कहा। "दीदी की इच्छा थी कि उनके बाद उनके अंग दान कर दिए जाएँ, इसलिए उनकी आँखें, किडनी, लीवर आदि सब दान कर दिया गया था" पाखी ने धीरे से झिझकते हुए रहस्य की परतें उधेड़ी। "ओह कब?" कामना ने चौंक कर पूछा। "दो साल पहले उनकी डेथ के बाद!" ये कहकर पाखी ने तेजी से बात बदल दी, साफ था वह इस बारे में और कुछ बताने में सहज नहीं थी।

पर रानू की तसवीर देखने के बाद कामना अचानक ही चुप सी हो गई। पाखी उससे दुनिया-जहान की बातें करती रही, हँसती रही पर साफ था कि कामना उसके साथ होकर भी साथ नहीं थी, वह किसी और ही सोच में गुम हो गई थी। माँ ने चाय के लिए बुलाया तो पाखी उसे डाइनिंग टेबल पर खींच लाई। माँ ने क्या नहीं रखा था चाय के साथ, समोसे, ढोकला, पनीर के पकोड़े, बेसन के लड्डू और भी बहुत कुछ।

"माँ इतना कुछ, कामना दीदी का पेट फट जाएगा आज।"

"अरे ऐसे कैसे फट जाएगा...!"

माँ हँस दीं। वह आज निहाल थीं उसे देखकर। रानू की पसंद की हर चीज वह कामना को खिलाना चाहती थीं। रानू खाने की बहुत शौकीन थी और उन्हें यकीन था कि जरूर कामना को भी ये सब पसंद होगा और ये सच भी था। कामना सब भूलकर खाने में मगन हो गई थी और उसकी खिलखिलाहट फिर से घर का कोना-कोना गमका रही थी। माँ और पाखी उसे देख-देख किसी और ही दुनिया में जी रही थीं। माँ की आँखें कामना को देख मानो अपनी खूबसूरत बेटी की आँखों में झाँककर पहले की खुशियाँ बटोर रहीं थीं। पाखी यह सब महसूस रही थी, चुपचाप अपने वजूद में ये माहौल सोख रही थी। कुछ साल पहले इसी खाने की टेबल पर डिनर करते समय रानू दीदी ने मानो किला फतह करने वाले अंदाज में बताया था कि उन्होंने अपने मरने के बाद अपने सारे जरूरी अंग, आँखें, किडनी, लीवर, दिल आदि सब दान करने के लिए रजिस्ट्रेशन करवा कर डोनर कार्ड ले लिया है। उनकी एक सहेली जो उनके साथ ही एम बी बी एस के अंतिम साल में थी, उसके साथ मिलकर उन्होंने इस महान काम को अंजाम दे दिया था और यह सब बताते हुए खुशी से फूली नहीं समा रही थीं। उसकी बातें सुनकर दादी सदमे में आ गईं थीं और नाराज होकर बोली थीं, "कैसी पागल है रानू, ये सब क्या करती रहती है और क्यों करती रहती है। अभी इक्कीस बरस की भी हुई नहीं और मरने की बातें... मुझ बूढ़ी पर भी दया नहीं आती। जरूरी अंग निकल गए तो मरने के बाद मुक्ति कैसे मिलेगी लड़की। आत्मा भटकती रहती है मरने वाले की। अक्ल कहाँ है तेरी?"

"दादी...!!"

रानू दीदी हँस हँस कर बेहाल हो रही थीं।

"आत्मा....भटकती....!"

"आत्मा को भी लीवर, किडनी की दरकार होती है क्या दादी।"

हँसते-हँसते उसकी आँखों में आँसू आ गए थे।

"दादी आप एक डॉक्टर पोती की दादी हैं...आपको ऐसी बातें

नहीं सोचनी चाहिए।"

"रानू! मुझ बूढ़ी के सामने उसकी पोती का अपने मरने की बात सोचना ठीक है क्या?"

रानू दीदी ननिहाल और ददिहाल दोनों तरफ इस पीढ़ी का पहला बच्चा थीं, कहना न होगा कि परिवार में उनकी अहमियत क्या थी। पैदा होते ही उन्होंने पता नहीं कितने नए रिश्ते एक साथ पैदा कर दिए थे। दादा-दादी, नाना-नानी, चाचा, बुआ, मौसी, मामा...न जाने कितने रिश्ते और बड़ी होते-होते अपने स्वभाव से हर किसी को एक अटूट मोहपाश में बाँधती गई थीं। दादी की बात से उन्हें एहसास हुआ कि ये नेकी का काम किसी के दिल पर चोट भी कर सकता है। वह दादी को समझाने और मनाने लगीं और फिर दुनिया जहान की ढेरों बातें और उदाहरण बताने लगीं। सब उनकी बात सुनते रहे और वो सबको हमेशा की तरह यकीन दिलाने में सफल रहीं कि यह बहुत नेक काम है और हर इंसान को इंसानियत के नाते ऐसा करना ही चाहिए। नतीजा हर कोई उनके इस नक्शेकदम पर चलने को उतावला होने लगा।

"और दादी कौन हम मरे ही जा रहे अभी...जब कभी मरेंगे तब हमारे दान किए अंग दूसरों की जिन्दगी सँवारेंगे। पर अभी तो आपको पड़दादी बनाने की जिम्मेदारी भी तो पूरी करनी है हमें!" उसने शैतानी से कहा था।

"शैतान! सुधरेगी नहीं कभी ये।» दादी हँसते हुए बोलीं थीं।

पर इसके एक साल बाद ही एक सड़क दुर्घटना में रानू दीदी दादी से किया अपना वादा अधूरा छोड़ गईं। दुर्घटना में उनके सिर पर घातक अंदरूनी चोट आई थी जिसका नतीजा अस्पताल पहुँचने के पहले ही उनकी साँसों की डोर टूट गई। आश्चर्यजनक रूप से उनके सारे अंग सही सलामत थे इसलिए उनकी इच्छानुसार वो सारे अंग दूसरों में प्रत्यारोपित करने के लिए दान कर दिए गए। दादी ये सदमा सहन नहीं कर पाई और एक महीने के अंदर ही वह अपनी लाड़ली पोती के पास चली गईं।

पीछे कलपता मन, बिलखता दिल और तार-तार सपने लिए सब जिन्दगी का साथ निभाए जा रहे थे। उनके जाने के बाद पसरा सन्नाटा आज कामना के आने से टूटा था। वही चंचल शरारती आँखें और बातें माँ-पापा और पाखी को पुराने खुशहाल समय में लौटा ले गईं थीं। कामना संग कुछ पलों के लिए वो अपनी रानू के साथ खुलकर जी रहे थे। कामना के चेहरे से साफ था कि आज नई बातें जानकार वह भी इस जिम्मेदारी को समझ रही थी, किसी के जीवन में रंग भरने वाली उस परी को सच्ची श्रद्धांजलि दे रही थी, उसी के घर में उसी के रूप में जीकर।

घर जाते हुए कामना ने गेट पर विदा करने आई पाखी के चेहरे को अपनी दोनों नरम हथेलियों में लेते हुए कहा,» ये आँखें क्यों तुम्हें देखते ही निहाल हो जातीं थीं, आज समझ में आया। तुम्हारी दीदी ज़िन्दा है छुटकी ऐसी ही किन्हीं आँखों में, मेरे जैसी किसी कामना की आँखें बनकर। तुम्हारी दीदी जैसा ही प्यार उमड़ता है मेरी आँखों से तुम्हारे लिए।» चकित पाखी को गले लगाते हुए कामना आगे कहती जाती है, « जानती हो पाखी दो साल पहले मेरी आँखों का कार्निया ट्रांसप्लांट किया गया था, मेरी बुझी आँखों की लौ फिर से जगमगाने के लिए, तुम्हारी दीदी या उन जैसी सोच रखने वाले किसी उदार और महान आत्मा के द्वारा किये गए नेत्रदान की ही बदौलत यह सम्भव हो पाया था!» पाखी का सिर सहला कामना उसे प्यार भरी आँखों से देखते आगे बढ़ गई। पाखी घर के गेट पर सुन्न खड़ी रह गई। कोई सुन पाता तो सुनता, वह बुदबुदा रही थी। "तुम ज़िन्दा हो दीदी। तुम जैसे लोग कभी नहीं मर सकते।" ■

अनाथ शैशव

- सुनील शर्मा

उन नन्हें सजल नेत्रों के मात्र एक दृष्टिपात में,
दर्शन हुए मुझे शैशव के कठोरता की रात में।
स्वयं तो पाया था उसे कोमल कृति,
परंतु निराधार न है इस की विकृति
चक्षु सान्निध्य की प्रवर्तक वो श्याम रेखाएँ
उस वृत्ताकार आनन में थीं गहरातीं,
सुख आकांक्षा से संज्ञाशून्य,
ध्वनित मूक संदेश थीं बतलातीं।
उस असीमता में मेरे हृदय ने किया प्रश्न धारण
घर्षित करता है तुझे जो उगल दे वो कारण,
ढूँढा पाया तो बस पाता ही गया
एक कष्ट अकेलेपन का आता ही गया।
एक अनकहा भँवर हो उठा सजीव
और अनकहे ही हो गया निर्जीव
पाता हूँ चेतनता में अपने समक्ष
सरस दृग का एक मूक कक्ष।
सम्भवत: उसी मूक कक्ष से हुई यह ध्वनि ध्वनित
यही है जीवन की भंगिमा का एक और गणित
श्रवण हुआ मुझे उस ध्वनि में एक शोकनाद
निराश्रय प्रताड़ित यही है वह शैशव अनाथ।

पिंजरा

- नीलम मलकानिया

लकड़ी की शानदार चमकती मेज़ पर खाना लगाते समय चाँदी जड़ी अपनी पसंदीदा चॉपस्टिक को क़रीने से सजाती हुई मिदोरी ने साकुरा को पूरे लाड़ से पुकारा "साकुरा... साकुरारारारा..खाना तैयार है! देखो आज मैंने तुम्हारी पसंद की आजी फ़ुराई बनाई है।"

ब्रैड के चूरे में लिपटी भुनी हुई आजी मछली साकुरा को बहुत पसंद थी और वो अपने ख़ास अंदाज़ में उस पर नींबू वाला सॉस डालकर खाती थी। कभी कभी तो मिदोरी के दाँतों में खट्टापन घर लेता उसे देखकर। पर जब साकुरा खाने के बाद संतुष्टिभरा चटकारा लगाती तो मिदोरी के भीतर हर बार माँ जाग उठती और वो आँखो में नौ महीने भर साकुरा को निहारने लगती। उसे लगता कि गर्भनाल अभी कटी नहीं है।

जापानी वसंत को देखने दुनिया भर से लोग आते हैं और चैरी के फूलों यानी साकुरा से लदे बिन पत्तों वाले पेड़ों को अचरज से देखते हैं। जब मार्च के अंत में इन्हीं खिलते फूलों के बीच नर्स ने मिदोरी के हाथों में एक जीते जागते गुलाबी फूल को रखा और वो उसकी हथेलियों पर कुनमुनाया तब उसके मुँह से भीगा सा एक शब्द निकला था साकुरारारारा.. और फिर उसके कई साल ख़ुश्बू से भर गए थे।

साकुरा बचपन से ही चंचल और बहुत होशियार थी। हर बात जल्दी से सीखती और अपनी हरकतों पर खुलकर हँसती। नानी और माँ दोनों को सारा दिन उलझाए रखती थी।

मिदोरी ने इस बार थोड़ी बेचैनी से फिर आवाज़ लगाई। "साकुरा बेटा..आ जाओ न, मैं खाने पर तुम्हारा इंतज़ार कर रही हूँ।"

'.....'

कोई जवाब न पाकर मिदोरी समझ गई थी कि माँ वाला हथकंडा अब काम नहीं आएगा। भले ही वो आजी फ़ुराई बना ले या कुछ और कर ले पर अब साकुरा खाना खाने बाहर नही आएगी।

बहुत ज़िद्दी है। अड़ गई तो बस अड़ गई। 12 साल की उम्र में ही अजीब सा बड़प्पन दिखाती है और कभी-कभी रहस्य सी बन जाती है। मिदोरी थोड़ी देर इंतज़ार करती रही और फिर चुपचाप उसके कमरे में गई। जाकर देखा तो उसका कमरा सूना था, अचानक मिदोरी को याद आया कि साकुरा तो नर्सिंग होम गई है। डॉक्टर ने फ़ोन पर बताया था कि साकुरा को थोड़ी देर में घर भेज देंगे। उफ़्फ़ क्या हो गया है उसे। कैसे भूल गई। अचानक उसे लगा कि वो बहुत बीमार हो गई है, उसे अलज़ाइमर जैसा कोई रोग हो गया है शायद। लेकिन जो भूलना चाहिए वही सब क्यों नहीं भुला पाती। मिदोरी खाने की मेज़ पर आकर निढाल सी बैठ गई। उसे याद आया कि ऐसे ही एक दिन दबे पाँव साकुरा के कमरे में गई थी तो साकुरा थिरक रही थी, बिना किसी संगीत के। जब साकुरा की नज़र उस पर पड़ी तो उसने कंधे झुमाकर अपने कुल्हे नचाए और बाँध तोड़ती नदी सी गुस्से में बाहर भाग गई। उसे देख मिदोरी का रोयाँ-रोयाँ काँप उठा था। रूह कहीं और पहुँच गई थी उसकी। उफ़्फ़ ये कौन है, उसकी साकुरा तो नहीं। जापानी ख़ून नस-नस से शालीन और सभ्य। फिर ये कौन झाँक रहा है उसकी बेटी के भीतर से। अपनी बेटी में एक अलग ही देश दिखाई देने लगा था उसे। ये कौन सा ज्वार है जो बेटी के शरीर से बार-बार बाहर आना चाहता है।

मिदोरी अकेली ही खाना खाने लगी और बीते दिनों में खो गई।

उस दिन उसे यक़ीं नही हुआ था जब टीचर ने घर पर शिकायत भरा ई-मेल भेजा था। कैसे कर सकती है साकुरा ऐसा। कैसी सनक है। दाँतों के बीच ब्लेड छिपाकर रखना और फिर अपनी क्लास के लड़के को डराना। कभी किसी की चोटी खींच लेना तो कभी किसी का सामान छिपा देना।..क्यों कर रही है वो ऐसा। कितनी बार माफ़ी माँगनी पड़ी थी मिदोरी को। साकुरा का व्यवहार उसके पूरे वजूद पर सवालिया निशान लगा देता था। बालों को गहरा हरा और नीला रंग लिया था, सामने के बालों की एक लट में मोती पिरोकर पीछे खींच रबर लगा लेती। जो पॉकिट मनी मिलती उसे इन्हीं सब में ख़र्च करती।

एक बार मिदोरी साकुरा के साथ पियानो शो देखने गई। पर साकुरा कुछ ही देर में ऊँघने लगी और बाहर जाने की ज़िद करने लगी। मिदोरी ने गुस्से में उसे बाहर भेज दिया और आधे मन से पियानो के सुरों में शांति तलाशने लगी। कुछ देर बाद बाहर जाकर देखा तो साकुरा ने अपना एक अलग ही मजमा लगा लिया था। सड़क पर प्रदर्शन करते एक कलाकार के साथ कंधे पर छोटा ड्रम रखकर बजाने लगी। लोग शांति से खड़े होकर सुन रहे थे और कुछ वहाँ रखी सी.डी. ख़रीद रहे थे।

साकुरा का व्यवहार हर चढ़ते दिन के साथ बिगड़ता जा रहा था। कुछ समय बाद मिदोरी को इस व्यवहार का विज्ञान समझने के लिए मनोवैज्ञानिक के पास जाना पड़ा। उसने बताया कि वैसे तो साकुरा सामान्य है लेकिन शायद उसके जीवन में पिता की कमी ही इस उद्दंडता का कारण है। मिदोरी के सामने फिर एक सवाल आन खड़ा हुआ। साकुरा के पैदा होने के कई साल बाद तक मिदोरी दहशत में रही। उसे डरावने सपने आते और वो रात को ही साकुरा को उसके बिस्तर से उठाकर अपने साथ सुला लेती। कसकर पकड़ लेती उसे। कोई उसकी दौलत उससे छीन न ले। घबराई सी रहती थी कि किसी दिन साकुरा अपने पापा के बारे में सब कुछ पूछने की ज़िद करेगी तो कैसे बता सकेगी पूरी कहानी। मिदोरी झटके से फिर टेबल पर लौटी। किसी तरह कुछ कौर खाकर वो अपने कमरे में पहुँची और बैड के पास सजी छोटी स्टडी टेबल पर पड़े उस काग़ज़ को घूरने लगी, जिस पर लिखा था कि पश्चिम एशिया के कुछ समूह तोक्यो में नृत्य प्रस्तुति के लिए आ रहे हैं और एक महीने की वर्कशोप का भी इंतज़ाम है। बच्चे स्कूल की ओर से रोज़ डाँस सीखने जा सकते हैं। लेकिन अभिभावकों की सहमति चाहिए।

मिदोरी के मन में दूसरे देश से जुड़ा एक डर था। इसलिए साकुरा को दूर देश के बुरे हालात बताती रहती और ऐसी फ़िल्में दिखाती जिनमें ग़रीबी की वेदना भरी होती। महिलाओं के ख़िलाफ़ होते अपराधों के बारे में सुनती और अपनी बच्ची के बारे में सोचकर काँप उठती। नहीं..नहीं.. वो अपनी बेटी को कहीं नहीं जाने देगी। लेकिन साकुरा को कैसे समझाए कि जब उसकी क्लास के बाकी बच्चे आराम से डाँस सीखने जा सकते हैं तब वो क्यों नहीं। क्या कहे मिदोरी? अपने डर को किन शब्दों में आकार दे? तलाक जापानी समाज में कोई बड़ी बात तो नहीं। महिलाएँ आराम से रह रही हैं। हर तरह का सहयोग मिलता है और सम्मान में भी कोई कमी नही है। फिर यहाँ क्या डर है। डर है उस जोश का, जो कभी-कभी उसे साकुरा में नज़र आता है। माँ-बेटी के बीच सवालों ने अपना सिक्का जमा लिया है। एक छोर साकुरा थामे खड़ी है और दूसरा मिदोरी। साकुरा ने तो नानी को ही माँ मान लिया है बस। अपने कमरे में बंद रहती है हर समय। कितने दिन हो गए स्कूल नहीं गई। ज़बरदस्ती की तो अपने पैर पर ब्लेड से कई जगह काट लिया। मिदोरी काँप गई.. ख़ून की हर एक बूँद में उसने ख़ुद को बहते देखा था। शुक्र है कि जान-पहचान के डॉक्टर ने बात सम्भाल ली।

मिदोरी अभी भी उस काग़ज़ को घूर रही थी। टेबल पर रखे उस काग़ज़ से रेत झड़ने लगी। कमरा एक मृगमरीचिका से भर गया। उस मेज़ पर यादों के टीले ही टीले उभर आए। उसे लगा वो उन्हीं टीलों में दब जाएगी और कुछ घुटी-घुटी सी सिसकियाँ उसे अपने मन में सुनाई देने लगीं।

केसरिया बालमां आवो जी, पधारो म्हारे देस.....

सारंगी, तबला और खड़ताल एक दूसरे का सुर संभालते माहौल में रंग घोल रहे

हैं। कालबेलिया की धुन पर राजस्थान थिरक रहा है और साथ ही वो भी।

एक समूह के साथ मिदोरी घूमने गई थी भारत। अलग-अलग जगह जाते हुए और यूनेस्को की विश्व सांस्कृतिक धरोहरों को देखते हुए उनका समूह पाँचवे दिन जयपुर के जिस हॉटेल में रुका था उन्होंने कालबेलिया नाइट का आयोजन करवाया था। जापान में जैज़, बैली डाँस और हिप हॉप को ही नाच की दुनिया समझने वाली 14 साल की मिदोरी हैरान आँखों से देखती रही रेतीली थिरकन को। जब साढ़े पाँच फ़िट लम्बे उस किशोर ने अपने बदन को दुहरा कर लोहे के गोल घेरे के बीच से निकाला तब सभी ने हैरान होकर तालियाँ बजाई। गोल प्लेट पर जब दो तलवारों पर उसका लंबा चौड़ा शरीर थिरका तब तो जैसे सभी की सांसे अटक गईं। मिदोरी का किशोरमन उस पल किसी सामुराइ को खोजने लगा। पुनर्जन्म पर आधारित कई कहानियाँ उसके शरीर में ख़ून के साथ एक पूरा दौरा कर आईं। भैरव सिंह नाम के इस किशोर नट की समूह में अपनी विशेष जगह थी और हाल ही में एक हादसे में अपने पिता को खो देने वाले भैरव पर सभी लाड़ लुटा रहे थे। मिदोरी को उसका नट होना अंग्रेज़ी की नॉट जैसा लगा और वो परिचय की किसी रेशमी गाँठ की तलाश में भैरव की भूरी आँखों की गहराई में उतरती रही।

तोक्यो के व्यस्त इलाक़े के एक बहुत मँहगे शराबख़ाने यानी इज़ाकाया में रोशनी की महीन सी चादर बिछी है। कोने में छोटा सा गोल प्लेटफ़ॉर्म बना है जिस पर खड़ी पतली दुबली लड़की हाथ में माइक थामे हिबारी मिसोरा का 'कावानो नागारे नो योउ नी' गाना गा रही है। सिगरेट के छल्ले हवा में अठखेलियाँ कर रहे हैं और बीच-बीच में जापानी शराब साके भी लड़खड़ाते लोगों के रूप में अपनी उपस्थिति दर्शाती है। मिदोरी भैरव को गीत का भाव बता रही है कि हालात कैसे भी हों जीवन में नदी की तरह बस बहते रहो। फिर वो चॉपस्टिक से चावल खाना सिखाती है और हर बार जब चावल मुँह में जाते-जाते वापिस कटोरे में गिर जाते तब भैरव खिसिया जाता और वो खुलकर हँसती। कई बार ऐसा हुआ। राजस्थान की हथकढ़ शराब तो भैरव छोटी उम्र से ही झेलता आ रहा था पर साके पचा पाना इतना आसान नहीं लगा। भैरव ने कटोरा पकड़ा और हाथ से खाना शुरू कर दिया, इस बार खिसियाने की बारी मिदोरी की थी।

जापान में लोकनृत्य के एक आयोजन में राजस्थान के कालबेलिया समूह को भी आमंत्रित किया गया था और भैरव सिंह को साथ लाने का ख़ास अनुरोध किया गया था क्योंकि जो समूह इण्डिया में भैरव के करतब देख चुका था वो अपने साथियों को भी ये दिखाना चाहता था कि सपेरों के देश में वानर प्रजाति अपने सुधरे हुए रूप में किस तरह हैरान कर देने वाले करतब दिखाती है।

जापान का एक अलाभकारी संगठन दुनिया के हर हिस्से में फैले जिप्सियों पर शोध करवा रहा था। तथ्यों से उजागर हुआ कि संसार में जहाँ भी आज जिप्सी हैं उनकी जड़े भारत के राजस्थान में ही हैं। सदियों पहले अपनी गठरी और गीत ले जिप्सी रेत के संसार से रवाना हुए थे और फिर हवाओं के रास्ते ख़ुशबू से हर तरफ़ फैल गए। कहीं समस्या बने तो किसी देश में मनोरंजन। मिदोरी की माँ इस संगठन के सदस्य की परिचित थीं और इसी लिए जब भी इस तरह का कोई आयोजन होता मिदोरी के लिए अलग संस्कृति के साथ ही अलग देश के उस गठीले नौजवान को समझने का भी मौक़ा होता जो किसी पॉप स्टार की तरह लंबे बाल तो रखता ही था पर नई उगी मूँछों की रोबिली छब जिसे ठेठ बनाती थी। जब वो बात करते समय मिदोरी को एकदम हवा में उछाल गोद में जकड़ लेता तब वो अपने दोस्तों के बीच राजकुमारी हो जाती। माँ की आँखें या तो ये देख नहीं सकीं या फिर सोचा होगा कि जीवन को समझने का ये भी एक तरीक़ा है।

मीठे झूठ की रफ़्तार समय से पिछड़ गई और मिदोरी के शरीर में आया बदलाव माँ ने तुरंत भाँप लिया था। चौथा महीना था और माँ ने सोच लिया था कि दो बच्चों की नादानी के फल इस तीसरे बच्चे की भेंट नहीं चढ़ाई जाएगी। मृत्यु की दारुण आहट ने जिस सिद्धार्थ को बुद्ध बनाया उन्हीं के रचे बौद्ध धर्म ने, अनुयायी माँ को जीवन का सम्मान करना सिखाया। समयचक्र किसी की परवाह किए बिना अपनी रफ़्तार से चलता रहा।

आनन फ़ानन में भैरव को तोक्यो बुलाया गया और सिटी ऑफ़िस में जाकर नोटिस दिया। एक काग़ज़ का टुकड़ा और प्यार को खेल समझते दो चढ़ते जीवन पति पत्नि बन गए। बहुत कोशिश की गई कि भैरव को कुछ काम सिखाया जाए, उसे जापानी समुदाय में उठने बैठने लायक बनाया जाए पर जंगली फूल घर के क़ीमती वास में आकर मुरझाने लगा। भैरव सूखकर काँटा हो गया। जो हरकतें पहले सबको हँसाती थीं वही अब जी का जंजाल बन गई। दूसरी तरफ़ दो डंडों के बीच बँधी रस्सी पर शान से चलने वाला भैरव ये समझ नहीं पाता था कि अपने ही घर में रहने के भी इतने नियम होते हैं और हँसने रोने का तय पैमाना।

राजस्थान के बवँडर से भी ख़ौफ़ न खाने वाले भैरव को अपने कमरे से बाहर निकलने में दहशत होने लगी। हर तरफ़ उसे खिल्ली उड़ाते चेहरे दिखने लगे। पढ़ाई के नाम पर पाँचवी की किताब किसी तरह बाँचने वाले भैरव के लिए जापान में कहीं भी अकेले आना जाना मुश्किल हो गया। न जापानी बोल पाता था और न ही अंग्रेज़ी। एक कंपनी में काम करके मिदोरी की माँ दो लोगों का ख़र्चा तो उठा रही थी पर अब तीन से चार होते प्राणियों को कैसे पालती। उधर भैरव ये बात समझ नहीं पा रहा था कि जब उसने ब्याह किया है तब अपनी बिंदणी को अपने गाँव में रखने का हक़ उसे क्यों नहीं। वो चाहता था मिदोरी को भी कुछ करतब सिखा दे और दोनो साथ में नाचते-गाते अपना जीवन बिताए, अपनी नन्हीं बेटी साकुरा को पालें। पाँव से रेत उड़ाते हुए मिदोरी ने एक बार भैरव के गाँव में उसके तम्बू में भी अठखेलियाँ की थीं लेकिन पर्यटक बन कैंपिंग के रूप में एडवेंचर फील करना और उसी तम्बू को अपनी दुनिया बना लेना दो अलग बातें हैं।

मिदोरी अपने कमरे में साकुरा को मुलायम गद्दे पर लपेटे पड़ी रहती और भैरव उसे अपने सीने में समेटने की कोशिश करता। बच्ची ज़रा सी कुनमुनाती और मिदोरी चीख पड़ती। ये चीख़े अब उनके बीच किरचों सी बिखर गई थीं और भैरव की मानसिक हालत भी बिगड़ने लगी थी। बस तरीक़ा यही था कि भैरव को वापिस भेज दिया जाए।

एक दिन किसी से मदद माँगने के बारे में सोच कर भैरव नवजात को लेकर भाग गया। एक जानकार तोक्यो के ही चर्चित बाज़ार ओकाचिमाचि में भारतीय मसालों की दुकान चलाते थे और कई बार मिदोरी की माँ ने उनसे अनुरोध किया था कि भैरव को समझाएँ कि वो अब नट नहीं, एक सभ्य परिवार का दामाद है।

मुसीबत में भैरव वहीं पहुँचा और तुरंत पहुँच गई पुलिस भी।

अपहरण का आरोप.. उफ़्फ़ भैरव अपने ही ख़ून का अपहरणकर्ता बन गया। एक अपराधी के लिए अब सभ्य परिवार का हिस्सा बना रहना मुश्किल हो गया था। मिदोरी इस पूरे दौर में बस एक मूक दर्शक रही। शायद वो ख़ुद भी समझ नही पा रही थी कि जो उसके साथ घट चुका है वो कितना सही है और किस तरह वो इस सबसे निजात पा सकती है।

हर कोई छला सा महसूस कर रहा था और एक सुबह सूरज बेचैनी में कुछ जल्दी निकल आया था। कैसे कसमसाया था भैरव, कभी लगता था मिदोरी को मार डाले, क्या ज़रूरत थी उसे भैरव के साथ एक ऐसा खेल खेलने की जिसमें वे दोनों बुरी तरह फँस गए हैं। कभी लगता बस अपनी औलाद को किसी तरह सीने से लगाए पहुँच जाए अपनी माटी में। जी भरकर चिल्लाए, शोर मचाए, फूट फूटकर रोए और लिटा दे अपनी रुई के फाहे सी उजली गुलाबी बेटी को रेगिस्तान के फ़र्श पर ताकि उसके शरीर में दौड़ती रेत उस नन्हीं बच्ची में वैसी ही चहक भर दे जैसी उसने अपने बचपन में महसूस की थी।

सब धरा रह गया और एक अंजान देश में बिलकुल पराया हो चुका वो नट अपने गँवारूपन के लिए हँसी का पात्र बना so called developing country की ग़रीबी ढोता हुआ बैरंग लौट गया अपनी पोटली लेकर। उसके सूट-बूट वाले सूटकेस मुँह चिढ़ाते रहे अप टू डेट बनाने की कोशिश करने वाली सास को। रेत का टीला बिखर रहा था और भुरभुरी रेतीली यादों में नहाई मिदोरी अपने स्टडी टेबल के पास न जाने कब से खड़ी थी। अपनी ही उधेड़ बुन में न जाने कितने साल बर्बाद किए मिदोरी ने। एक गहरी साँस लेकर सोच में पड़ गई है। लगने लगा है कि झूठ या कोई बहाना अब उसे अपनी बेटी के पास नहीं लाएगा बल्कि वो उसे हमेशा के लिए खो सकती है। बाहर कुछ आवाज़ हुई तो मिदोरी ने जाकर देखा। माँ साकुरा को दोनों हाथों में थामे उसके कमरे में ले गईं और जाकर लिटा दिया। उसके पैरों पर पट्टियाँ बँधी थीं।

नानी ने घर में आते ही ग़ौर किया कि राइचो की आवाज़ नहीं आ रही है। कहाँ गई राइचो। जापान के ओन्ताके पवर्त पर पाई जाने वाली ये चिड़िया अपने आप में बहुत विशेष है। ये पहाड़ी पक्षी अपनी मीठी आवाज़ के लिए तो मशहूर है ही लेकिन एक मान्यता का वाहक भी था। लोग कहते थे कि जब भी कोई उस पर्वत पर भटक जाता था तब राइचो रास्ता सुझाती थी। गाते-गाते जगह बदल कर उन्हें आवाज़ देती और जो लोग उस मासूम पक्षी की दृढ़ता पर भरोसा करते वो भटकने से बच जाते।

मिदोरी ने राइचो को कभी पिंजरे में बंद नहीं किया था और पूरा घर उसके लिए खुला आकाश बना दिया था लेकिन मिदोरी शायद समझ नहीं पाई कि इस तरह उसने पूरे घर को ही एक पिंजरे में बदल दिया था। सब खिड़की दरवाज़े बंद रहते थे। राइचो मुरझाने लगी। आज शांत हो गई है राइचो की सारी बेचैनी। माँ ने तलाशा तो सोफ़े के पास राइचो मरी हुई पड़ी थी।

साकुरा चीख पड़ी राइचो को देखकर। फूट-फूट कर रोने लगी। पर माँ ने भीगी पलकों से कुछ और ही देखा। मिदोरी एकदम शांत खड़ी है। पथराई सी कभी रेइचो को देखती है और कभी साकुरा को।

मिदोरी को अचानक ही समझ आ गया कि नन्हीं चिड़िया को गाना था क्योंकि वो गाने वाली ही चिड़िया थी। उसकी प्रजाति नहीं बदली जा सकती थी। खुला आकाश उसके जीवन की शर्त थी। अचानक कहीं कुछ कौंधा। मिदोरी भाग कर गई और एक काग़ज़ उठा लाई जिस पर लिखा था कि एक बच्ची को अपने पिता से मिलने का अधिकार है।... नहीं-नहीं.. उस काग़ज़ पर तो बस इतना ही लिखा था कि साकुरा डांस क्लास में जा सकती है। सीने पर रखा एक बड़ा सा पत्थर उतरा हो जैसे, मिदोरी ने गहरी साँस ली और वो काग़ज़ साकुरा की ओर बढ़ाया। साथ ही एक छोटी पर्ची भी। शायद मुँह से बोलने की हिम्मत नहीं जुटा पाई थी इसलिए लिख दिया था कि तुम थिरकोगी।

साकुरा हैरानी से उस काग़ज़ पर किए हस्ताक्षर को टुकुर-टुकुर ताक रही थी। नानी मृत रेइचो को देख रही थीं और मिदोरी बिस्तर पर लेटी उस राइचो को जिसके लिए उसने अभी-अभी पिंजरे का दरवाज़ा खोला था। ■

वाणी बने वीणा

- सारिका अग्रवाल

हमारी वाणी हमारी आत्मा की अभिवियक्ति का माध्यम है, जिसके द्वारा हम अपने मन के भावों को दूसरे तक पहुँचाते हैं. सत्य बोलने, कम बोलने और मधुर बोलने से, बोलने वाले की वाणी सिद्ध हो जाती है।

व्यर्थ बोलने की अपेक्षा मौन रहना वाणी की प्रथम विशेषता है।

संभलकर बोलिये, आपके शब्दों में एटम बम से भी अधिक शक्ति होती है।

वाणी पर नियंत्रण रखकर, हम सफलता की बुलंदियों को छू सकते हैं।

मनुष्य का मान अपमान, उसकी प्रतिष्ठा अप्रतिष्ठा तथा उसकी सफलता असफलता सब उसकी जिब्हा के वशीभूत है।

जिन लोगों के मुख पर प्रसन्ता होगी, हृदय में दया होगी, वाणी में मधुरता होगी, कर्तव्यों में परोपकार होगा, वे सभी के लिए वंदनीय एवम प्रशंसनीय होगा।

मीठे वचन वक्ता एवं श्रोता दोनों को सुख देते हैं।

कबीर दास जी ने कहा है..

"ऐसी वाणी बोलिये, मन का आपा खोये
औरन को शीतल करे आपहु शीतल होये"

अर्थात ....

हमें ऐसे शब्द बोलने चाहिए, जिससे सुनने वाले को सुकून मिले और वह भाव विभोर हो उठे, साथ ही में आपको भी शीतलता प्रदान करे।

कहते हैं -

"इंसान को बोलना सीखने में तीन साल लग जाते हैं, लेकिन क्या बोलना है, यह सीखने में पूरी ज़िन्दगी लग जाती है"।

हमें अपने शब्दों को उसी प्रकार तोलकर इस्तेमाल करना चाहिए, जिस प्रकार हम कोई भी चीज़ खरीदने से पहले परखते और सोचते हैं।

कभी क्रोध में कहे गए शब्द, दूसरे को तो दुःख पहुँचाते ही हैं, पर उनसे हम खुद भी आहत हुए बिना नहीं रह सकते। शब्दों का कड़वापन इतना विषैला होता है, की वह किसी औषिधि से भी ठीक नहीं हो सकता।

"शब्द शब्द संभालकर बोलिये
शब्द के नहीं हाथ,नहीं पाँव
एक शब्द में है औषिधि
और एक शब्द में है घाव" । ■

हिरोशिमा

- सुरेश ऋतुपर्ण

नीलकण्ठी हिरोशिमा

अणुबम के ताप में तप कर
कुन्दन बन गयी है तुम्हारी काया
तुम्हारे महाविनाश की तस्वीरों को देख
आज तक बची रह सकी है पृथ्वी
अणुबमों के प्रहार से

तुम्हारे घावों के निशान
बड़े-बड़े तानाशाहों के दुस्साहस को
चुनौती देते हैं।
इसी से बचा है अभी तक
मानव-भविष्य का शिशु

विश्वयुद्ध के मंथन से
निकला सारा ज़हर
तुम्हारे ही हिस्से आया था
जिसे पी गए थे तुम
शिव की तरह
और विश्व-सभ्यता को
अमृत-दान दे दिया तुमने

एक तुम्हारा नाम ही
बचाता रहेगा आगत-सन्तति को
अणुबम के हलाहल से
जिसे पी कर स्वयं
नीलकण्ठी हो गए हो तुम !

कैसे मर सकती हो तुम, सदाको !

तुमने जीना चाहा था सदाको !
तुम्हारे दोस्तों ने भी
यही चाहा था कि
तुम्हारी आँखों में पल रहा
जीवन का सपना
सच हो जाए

सभी बना रहे थे
कागज़ की सारसें
जबकि तुम्हारी आँखों की चमक
धुंधलाती जा रही थी

अणुबम के विकीरण से
लगे असाध्य रोग के कारण
हज़ार सारसें बनाते बनाते
तुम गहरी नींद में सो गयीं थीं

पर तुम्हारे स्मारक पर लटकी
हजारों हजार सारसों की
रंग बिरंगी लड़ियों को देख लगता है-
तुम मर कर भी अमर हो सदाको!

तुम्हारे लिए
दुनिया के करोड़ों बच्चों का दिल
आज भी धड़कता है
विश्व शान्ति के लिए
शान्ति कपोत के पंखों की तरह
हाथ उठाए
खड़ी हो तुम अडिग
कैसे मर सकती हो तुम, सदाको !